प्रवचन नं. ३८ गाथा-११ ता. १९-७-७८ बुधवार अषाढ सुदी-१४ सं.२५०४

ग्यारहवीं गाथा। व्यवहारनय सभी अभूतार्थ होने से... उसकी उपेक्षा कराई है। व्यवहारनय का विषय है अवश्य, क्योंकि यह राग है न ? असद्भूत उपचार राग है, तब है उसका ज्ञान होने पर उसे वीतरागता नहीं - ऐसा उसे ज्ञान हो और `राग को जाननेवाला ज्ञान' यह सद्भूत उपचार (है) यह अपनी ज्ञान की मौजूदगी सिद्ध करता है तब फिर यह `राग को जाने' (यह) उपचार - ऐसा आता है ज्ञान है अपनी पर्याय में अपना और यह `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा कह कर... है परंतु वर्तमान पर्याय की उपेक्षा, करायी... यह सभी अभूतार्थ होने से असत्य अर्थ को प्रगट करता है। सीधी भाषा तो ऐसी है, जाने सभी पर्याय नहीं - ऐसा नहीं, पर्याय की

उपेक्षा करना और त्रिकाली भगवान शुद्धचैतन्य, उसका अवलम्बन लेना तब पर्याय होने पर भी उपेक्षा करके `नहीं' - ऐसा कहने में आया है। अब यह तो व्यवहार है इसकी बातें बहुत लम्बी है।

अब यहाँ आया `शुद्धनय' एक ही भूतार्थ होने से... दूसरे स्थान में तो शुद्धनय के भेद पड़े हैं, शुद्ध-अशुद्ध आदि परंतु यह वास्तव में अशुद्धनय भी व्यवहार में जाता है। यहाँ तो एक, शुद्धनय एक ही है, उसमें दूसरा विभाग नहीं, अर्थात ! शुद्धनय का विषय जो त्रिकाली भगवान ध्रुव, उसकी दृष्टि के लिये शुद्धनय एक ही है। अरे ! अब ऐसी बातें। समझ में आया ?

वस्तु जो है ध्रुव एक समय में, उसे एक न्याय से तो यहाँ नय कही है शुद्ध, फिर भी... शुद्धनय उसका विषय करनेवाला है, त्रिकाली ध्रुव को (विषय करनेवाला) यह एक ही शुद्धनय है, यह शुद्धनय अर्थात ज्ञान का अंश, यह त्रिकाली को विषय करता है। इसलिये शुद्धनय एक ही भूतार्थ (है) क्यों ? प्रयोजन तो द्रव्य को दृष्टि में लेना उसको स्वीकार करना, यह प्रयोजन है। समझ में आया ?

यह पर्याय, ज्ञान का अंश वह आत्मा, उसकी भी उपेक्षा करनी (है)। ज्ञान का अंश जो राग को जाने उसे राग के उपचार की भी उपेक्षा कराई है। आहाहा ! और राग है, इस प्रकार इसके दो प्रकार है, एक राग है यह साधन है और साध्य है कि जो अव्यक्त राग है जो बुद्धिपूर्वक राग है तो अबुद्धिपूर्वक राग (भी) साथ है, उसकी भी यहाँ उपेक्षा कराई अब। आहा ! यह हमारी वस्तु-दृष्टि के विषय में यह वस्तु नहीं `ज्ञान सो आत्मा' यह (भेद) भी हमारे दृष्टि के विषय में नहीं। आहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्म।

शुद्धनय एक ही शब्द है। देखा ? `एक ही' यह अन्य जगह आचार्य शुद्धनय का भेद करें इसमें टीका में और अर्थ में आयेगा। अशुद्धनय भी, फिर अशुद्धनय को पर्यायनय कहकर व्यवहारनय कहना - ऐसा कहा है। आहाहा ! अर्थात क्या ? त्रिकाली वस्तु को स्वीकार कराने को, पर्याय और पर्याय के भेदों की उपेक्षा किये बिना, उनका लक्ष्य छोड़े बिना त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि न हो और प्रयोजन तो ज्ञायकभाव का अनुभव करके-सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य सत् महाप्रभु, सर्वोत्कृष्ट परपारिणामिक शुद्धपारिणामिक परमभाव, शुद्ध सहज स्वभाव परमभाव, शुद्ध सहज परमभाव त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की प्रथम सीढ़ी वहाँ से प्रारंभ होती है, इसलिये उसे शुद्धनय एक ही है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग।

`शुद्धनय एक ही भूतार्थ' इसप्रकार शुद्धनय एक ही सच्चा `होने से' फिर यह

भी `होने से', शुद्धनय एक ही सच्चा होने से, सत्य अर्थात है `विद्यमान-सत्य-भूत अर्थ को प्रगट करता है' शुद्धनय अर्थात कि जो ज्ञान का अंश भाग, वह शुद्धनय एक ही है। क्योंकि यह शुद्धनय त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है, सत्य है, एकरूप है यह ध्रुव सत्य और विद्यमान है ध्रुव, भूतार्थ अर्थात विद्यमान पदार्थ है, उसे प्रगट करता है। अरेरे ! फिर से...

(श्रोता :- शुद्धनय पर्याय को कहा है न महाराज ?) पर्याय है परंतु पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर, पर्याय की दृष्टि द्रव्य ऊपर जाती है उसका नाम शुद्धनय (है)। उसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं - ऐसा कहते हैं। पूरण-पूरण वस्तु है, उसमें उसका ज्ञान और प्रतीति हुये बिना, पूर्ण है - ऐसा स्वीकार आये नहीं तब तक पूर्ण है - ऐसा उसे कहाँ है ? क्या कहा ? एक समय की पर्याय के अतिरिक्त पूर्ण प्रभु है, आहाहाहा ! अनंत गुण का प्रभु एकरूप ऐसी पूर्ण चीज है, उस वस्तु का आश्रय लिये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। अर्थात कि पूरण है-यह है तो है परंतु जिसकी दृष्टि में पूरण है - ऐसा न आये, तब तक उसे तो पूर्ण है ही नहीं। समझ में आया ? हाँ ?

यह प्रश्न हुआ था न ? वीरजीभाई के लड़के ने प्रश्न किया था, त्रिभुवनभाई ने, कि आप आत्म को कारणपरमात्मा कहते हो तब कारण हो तो कार्य तो आना चाहिए ? तब कारण परमात्मा तो सभी के पास है, अतः कार्य क्यों आता नहीं ? यह प्रश्न किया था। वीरजीभाई के त्रिभुवनभाई ने, क्या कहा ? यह आत्मा है न, त्रिकाली, उसे `कारणपरमात्मा' परमात्मा कहते हैं और उसमें से केवलज्ञानादि हो उसे कार्य परमात्मा कहते हैं पर्याय की पूर्णता को कार्य परमात्मा कहते हैं और वस्तु की पूर्णता को कारण परमात्मा कहते हैं तब जो कारण परमात्मा है, तब कारण है तो कार्य आना चाहिए ? - ऐसा प्रश्न हुआ था।

परंतु किसको, कारणपरमात्मा है, परंतु जो माने उसे है कि नहीं माने उसे है ? जिसकी दृष्टि में तो आया कि यह है तब उसे कारण परमात्मा हुआ। दृष्टि में... `यह है' - ऐसा जिसने स्वीकारा, उस दृष्टि में `यह है' - ऐसा स्वीकारा, तब कारणपरमात्मा `है' - ऐसा उसकी प्रतीति में आया और यह प्रतीति में आया इसलिये उसे सम्यग्दर्शनरूपी कार्य हुआ। ऐसी बात है।

फिर से... कारणपरमात्मा तुम कहते हो, `कारणपरमात्मा' कहो `कारणजीव' कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, एकरूप कहो, तब - ऐसा जो कारण प्रभु है व... उसे कारण कहो तो कार्य आना चाहिए। बात सच्ची है, परंतु किसे ? जो कारण प्रभु है त्रिकाली, उसका स्वीकार जिसे दृष्टि में हुआ... उसे यह कारणपरमात्मा है। परंतु इसकी दृष्टि में आया नहीं और दृष्टि में पर्याय और राग का स्वीकार है, यह पूर्ण

है, इसका तो स्वीकार है नहीं, तब उसे तो उसे कारणपरमात्मा है ही नहीं। समझ में आया ? यह गाथा सूक्ष्म है भाई ! यह तो जैनदर्शन का प्राण है यह गाथा। इसमें तो जितना (उपयोग) डाले उतना निकले - ऐसा है, पार नहीं। आहाहा !

क्या कहा ? कि एक समय में, आत्मा ध्रुव भी है और उसी समय में उसकी एक समय की पर्याय भी है। दो है न ! पर्याय भी इसीमें है न ? पर्याय में पर्याय हो दो है। अब इन दोनों में जिसका पर्याय का स्वीकार है कारण कि इसकी दृष्टि इसके ऊपर है, पर्याय है उसका स्वीकार हुआ, अथवा पर्याय से दूर लम्बा गया तो राग है, शरीर है इसप्रकार उसको स्वीकार हुआ परंतु उसमें त्रिकाली है उसका स्वीकार नहीं हुआ, वस्तु है फिर भी स्वीकार न हुआ, समझ में आया ?

यहाँ तो त्रिकाली है ज्ञायकभाव, ध्रुव स्वभाव उसका जिसने वर्तमान पर्याय में ज्ञान में ज्ञान हुआ, भले वह वस्तु पर्याय में नहीं आयी, परंतु पर्याय में यह है - ऐसा ज्ञात हुआ, उसे कारणपरमात्मा है, और ऐसा कारणपरमात्मा जैसा है वैसा स्वीकार हुआ उसे सम्यग्दर्शन का कार्य हुये बिना रहे नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें अब कहाँ ?

इसलिये शुद्धनय एक ही भूतार्थ है। आहाहा ! किसे ? जो वर्तमान पर्याय और राग उसकी उपेक्षा करके अर्थात उसको गौण करके अर्थात कि यह है फिर भी उसका आश्रय छोड़कर, यह त्रिकाल है ज्ञायकभाव है यह है उसका आश्रय लेने से उसका स्वीकार हुआ, यह तो अभूतार्थ है, इसी दृष्टि हुई ज्ञान में ज्ञातहुआ, उसे यह भूतार्थ है। आहा ! ऐसी बातें है। सूक्ष्मबातें बापू ! जैन दर्शन अभी तो स्थूल कर डाला। आहाहा !

दोनों है। पर्याय है पर्याय में राग भी है और द्रव्य भी है। है ? अब राग है, पर्याय है इतनी जिसकी दृष्टि वहाँ है उसके लिये तो (द्रव्य) इतना है। उसके लिये त्रिकाली है यह तो आया नहीं, जिसकी वर्तमान पर्याय ऊपर दृष्टि है उसे यह पर्याय है - ऐसा श्रद्धा में आया, तब तो यह पर्यायदृष्टि ओर आगे जाये पर्याय की दृष्टिवाला तो - ऐसा मानता कि राग है, यह शरीर है - ऐसा मानता है। यह उसकी दृष्टि तो दूर होकर इसप्रकार (राग और शरीर पर) जाती है। तब इतना माना कि यह तो बराबर अर्थात कि मिथ्यात्व है। इतना माना यह इसने इसलिये ठीक है, परंतु यह मिथ्यात्व है। आहाहा !

परंतु त्रिकाली वस्तु है। आहाहाहा ! एक समय में पूर्णानंद का नाथ प्रभु यह 'है' फिर भी पर्यायबुद्धिवालों को वह नहीं ? समझ में आया ? आहा ! इसप्रकार जिसे राग की रुचि है वह, यह पुकार करते है कि व्रत-तप और भक्ति करते-

करते निश्चय (प्रगटे) अर्थात राग का स्वीकार है उसे। उसके अनुसार व्यवहारनय का विषय है अवश्य `नय' नहीं परंतु दूसरी अपेक्षा उसे व्यवहारनय का विषय है। `नयवाला' उसे जाने। समझ में आया ?

परंतु उसे त्रिकाली वस्तु है महा प्रभु ! जिसमें संपूर्णतत्त्व भरा है पूरण परमात्मस्वरूप है जिसके गुणों का माप नहीं इतने तो गुण है, इन सभी गुणों का एकरूप जो है... आहाहा ! यही सत्य है। किसको ? ***कि जिसने पर्याय और राग की उपेक्षा करके और त्रिकाली ऊपर जिसने दृष्टि डाली, उसके लिये यह भूतार्थ सत् है और इससे भूतार्थ सत् है ऐसी दृष्टि हुई इसलिये दृष्टि भी सच्ची है। समझ में आया ?*** कहो छोटा भाई !

जो है, दोनों हैं, पर्याय है, राग भी है और त्रिकाली भी है। अब इसमें यह दोनों हैं, जिसको त्रिकाली वस्तु की दृष्टि नहीं, उसे वर्तमान पर्याय और राग है उसकी दृष्टि में, उसके लिये तो बराबर है वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्योंकि उसकी दृष्टि भूतार्थ ऊपर नहीं। त्रिकाली वस्तु है उसके ऊपर उसकी दृष्टि नहीं गई। आहा !

अब जिसे त्रिकाली वस्तु है - एक ही वस्तु, शुद्धनय एक ही है और उसका विषय एकरूप ही परमार्थ है। आहाहा ! यह शुद्धनय एक ही सच्चा होने से एक ही सत्य होने से, यह सत्य अर्थात विद्यमान यह है उसे, और सत् है और विद्यमान पदार्थ है उसे यह प्रगट करता है। अर्थात शुद्धनय विद्यमान पदार्थ है उसे विषय करके `है' इसप्रकार उसे प्रगट करता है। `है' इसप्रकार उसकी पर्याय में प्रगट होता है। आहाहाहा ! अरे ! - ऐसा सूक्ष्म है।

`पंचाध्यायी' में उन्होंने यह अर्थ लिया है कि जो यह शुद्धनय है एक ही कहता है और उसके दो भेद करें तो सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर मिथ्यादृष्टि है। - ऐसा पंचाध्यायी में है। क्या कहा ? पंचाध्यायी में - ऐसा है कि भगवान की आज्ञा एक ही है कि शुद्धनय वह एक ही नय है इस एक शुद्धनय के दो भाग करे-तो अशुद्ध है और अशुद्ध उपचरित है और अशुद्ध अनुपचरित है, ऐसे भेद व्यवहार करता अशुद्धनय के, शुद्धनयमें से तो, सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर मिथ्यादृष्टि है। पंचाध्यायी में - ऐसा कहा है। तो फिर... इसप्रकार मक्खनलालजी ने अर्थ किया है वहाँ तो... दूसरे तो अन्य जगह गड़बड़ किया है बहुत जगह, वहाँ अर्थ किया है कि भाई यह यहाँ कहते हैं यह स्वसमय में आश्रय लेने के लिये इस स्वसमय की अपेक्षा एक नय कही है। स्वसमय अर्थात आत्मा त्रिकाली। समझ में आया ? उन्होंने लिखा है नीचे मक्खनलालजी ने, पंचाध्यायी का पहला अर्थ मक्खनलालजी ने ही किया)है)। फिर

दूसरा देवकीनंदनजी ने और तीसरा फूलचन्दजी ने पंचाध्यायी की तीन टीकायें है। यहाँ तीनों पुस्तकें है। यह बात फूलचन्दजी की पुस्तक में है।

यहाँ क्या कहना है ? आहा ! प्रभु एकसमय में... पर्याय भी है, राग भी है और यह ध्रुव एकरूप भी है। अब जब एकरूप वस्तु है उसे स्वीकार करना हो तब उसे पर्याय और राग को जाननेवाली नय है उसकी उपेक्षा करनी पड़ेगी। उसे हेय करके एक त्रिकाली वस्तु है उसे उपादेय करना पड़ेगा। समझ में आया कुछ ?

शुद्धनय... गंभीर है बापू ! यह गाथा तो ऐसी गाथा है। आहाहा ! ***अस्ति तो दोनों की है - पर्याय के भी अस्ति है, राग की भी अस्ति है और ध्रुव की भी अस्ति है। अस्ति अर्थात है, दोनों विद्यमान है, परंतु एक विद्यमान है उसे अविद्यमान करके अर्थात लक्ष्य छुड़ाने के लिये, वह नहीं - ऐसा कहकर और विद्यमान एक त्रिकाली वस्तु है उसकी दृष्टि कराने यह सत्य और भूतार्थ वह एक ही है।*** आहाहाहा ! कहो, हीराभाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। हमारे आये है न हसुभाई और यह आये है। सूक्ष्मगाथा है न। आहाहाहा !

प्रभु तुम कितने, कहाँ हो पूरे ? वहाँ उसकी दृष्टि ले जाने, वहाँ उसकी दृष्टि का विषय बनाने, यह पर्याय और राग होने पर भी वह दृष्टि का विषय नहीं, यह गुण भेद करना भी दृष्टि का विषय नहीं। तब फिर पर्याय और राग वह तो दृष्टि का विषय है ही नहीं। आहाहा ! यह जानने लायक एक ही है परंतु आदर करने के लिये तो यह एक ही त्रिकाली वस्तु यह ही शुद्ध और सत्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह दूसरी पंक्ति का अर्थ चलता है। यह आहाहा ! गहन है प्रभु ! आहाहा ! आत्मा शरीर प्रमाण असंख्य प्रदेशी, उसमें अनंत... अनंत... अनंत... अनंतानंत अनंतानंत को अनंतबार गुणा करो और उसके बाद जो राशि आये ऐसे उसको अनंतबार गुणा करो, उसकी राशि आये उसे अनंतबार गुणा करो, यह अनंत बार गुणा करते-करते यह अनंत अनंत चले जायें अंदर तो भी उन गुणों की सीमा, उस संख्या में आती नहीं। आहाहा ! - ऐसा परमात्मस्वभाव... - ऐसा द्रव्य स्वभाव। आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ के अलावा कहीं है नहीं। समझ में आया ? आहा !

श्वेताम्बर में - ऐसा कहते हैं एकसमय केवलज्ञान दूसरे समय केवलदर्शन, परंतु इस बात में कितना फर्क। यहाँ तो परिपूर्णवस्तु है उसका परिपूर्णज्ञान और दर्शन एक समय में दोनों होते हैं। समझ में आया ? यह तो पूर्ण पर्याय की बात की। परंतु यह पूर्ण पर्याय जिसमें से निकलती है वह वस्तु पूर्ण है। आहाहाहा ! यह पूर्ण वस्तु ज्ञान से और दर्शन से पूर्ण - इसप्रकार अनंतगुणों से पूर्ण वस्तु है, उसे

यहाँ सत्य कह कर विद्यमान कहकर, अस्तित्ववाली सही वस्तु है - ऐसा कहकर उसे सत्य और भूतार्थ कहने में आता है। आहाहा !

है ? पहले - ऐसा था कि अविद्यमान, असत्य और अभूत अर्थ को प्रगट करती है, दूसरे में विद्यमान सत्य और भूत अर्थ को प्रगट करती है। दो सिद्धांत आ गये, गाथा के न्याय।

`यह बात दृष्टांत से बताते है' अब कहते हैं, कि एकदम न समझ में आये तुझे, तो हम दृष्टांत देकर समझाते (है)। `जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से' - विशेष (बात) यहाँ है अकेला कीचड़ मिलने से नहीं। (परंतु) `प्रबल' कीचड़ मिलने से... पानी में कीचड़ है न पंक... प्रबल कीचड़ मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव... (पानी का जल (का)) सहज स्वाभाविक एक निर्मलभाव है। उसमें मलिन भाव यह उसका स्वभाव है ही नहीं। आहाहा ! यह पानी का सहज एक निर्मल भाव ढ़क गया है। आहाहा ! अर्थात कि मलिनता की पर्याय देखनेपर यह दिखता नहीं, अर्थात इसे ढ़क गया है। निर्मल जल तो है। परंतु मलिनता को देखनेवाले को तो निर्मल जल ढ़क गया है। अर्थात निर्मल जल दूर हो गया है। आहाहाहा ! है ? तिरोभूत (अर्थात) दूर हो गया है। अर्थात कि जो मलिन को देखता है कादव को, वहाँ निर्मल जल है तो अवश्य, परंतु वह उसे देखता नहीं। आहाहा ! इसलिये उसे निर्मल जल का स्वरूप तिरोभूत, ढ़क गया (है)। दूर हो गया, उसकी दृष्टि में आया नहीं... मलिन ही दिखा, परंतु निर्मल जल होने पर भी दिखता नहीं। आहाहाहा !

`यह ऐसे जल का अनुभव करनेवाला' निर्मल जल जहाँ ढ़क गया है। आहाहाहा ! मलिन को देखनेवाले कीचड़ से मिले हुये जल को, मिले हुये कीचड़ से मिला हुआ देखनेवाले को निर्मलजल है यह दृष्टि में आता नहीं अर्थात ढ़क गया है, उसे तो आच्छादन हो गया है। आहाहा !

अभी तो यह दृष्टांत है हाँ ! फिर उसका सिद्धांत घटायेंगे बापू। मार्ग - ऐसा सूक्ष्म है भाई ! उसे ज्ञान का मंथन करना चाहिए। ज्ञान के अंदर कसरत करना पड़े हाँ। आहाहा !

कि जो जल... अभी पहले दृष्टांत में, जल है तो निर्मल परंतु कीचड़ के मिलने से वह वर्तमान पर्याय में मलिन दिखता है, उसे जो जल निर्मल है वह ढ़क गया है, उसकी नज़र में आया नहीं इसलिये उसे `नहीं' उसे ढ़क गया है। आहाहा !

कुकड़ा (गाँव) है न वहाँ मूळी के पास, कुकड़ा गाँव है। वहाँ हम गये थे। जेठ महिने का समय था राजकोट जाना था। रतनचन्दजी शतावधानी वहाँ आये थे, पानी गंदा ही था, वहाँ कुआ नहीं था। अभी एक राजपूत गया था न अस्पताल,

चन्दुभाई के पिता के लिये, वहाँ यह कुकड़ा के राजपूत थे, वह आये थे, दर्शन करने विचारे, हम कुकड़ा के हैं और हमारे यहाँ जैनों की वस्ती नहीं, परंतु उपाश्रय बनाया है साधु आयें, तब हम उस दिन गये उपाश्रय नहीं था चौपाल में ठहरे थे हम। यह कोई राजपूत थे वह आये थे और कोई होंगे शहर में। हमें पानी मिला, एकदम मैला। कारण कि यहाँ के तालाब का पानी मैला, इस तरफ (दूसरा) कोई साधन नहीं, कुआ नहीं, निर्मल पानी की नदी बहती नहीं - ऐसा कुछ है नहीं। इसे महाराज ठरने[१] देना, घर (जाकर), ठहराना मैल नीचे बैठ जाये, इसप्रकार। आहा ! हा !

परंतु, वह मैल को ही देखता है, यह तो पानी अंदर निर्मल है वह तो देख सकते नहीं। हाँ ? देख सके तो ठारने के लिये प्रयत्न करें। इसप्रकार... जल का एक निर्मलभाव तिरोभूत हो गया है। ऐसे जल का अनुभव करनेवाला पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक नहीं करनेवाला, पानी को कीचड़ से जुदा नहीं जाननेवाला, देखा ? गंदा पानी यह कीचड़ है और जल निर्मल है, दोनों को भिन्न नहीं करनेवाला, आहा...! दोनों का विवेक नहीं करनेवाले बहुत तो, सभी हैं - ऐसा नहीं कहा। सभी मैला अनुभव करते हैं - ऐसा नहीं कहा। बहुत तो, आहाहा ! उसे अर्थात पानी को मलिन ही अनुभव करते हैं। मैला सो पानी इसप्रकार मलिन ही अनुभव करते है, बहुत !

परंतु कितने ही अपने हाथ से डाले हुये, अब यहाँ भी `कितना' कहा, सभी नहीं। कितने ही व्यक्ति `अपने हाथ से डाले हुये' पुनश्च यह क्या कहा ? यहाँ नौकर को आज्ञा की नहीं कि इसप्रकार यह डालो और इसे भिन्न करो, खुद स्वयं भिन्न करता है। मैल और पानी को स्वयं अपने (हाथ) से भिन्न करता है। अपने हाथ से डाला क्या ? कतकफल निर्मली औषधि, एक औषधि होती है निर्मली (जो) किराने की दुकान पर मिलती है, वह पानी में डालते ही मैल भिन्न हो जाता है और पानी भिन्न हो जाता, निर्मली औषधि आती है औषधि लिखा है न इसमें निर्मली औषधि, यह अपने हाथ से डालता है। नौकर से कहा नहीं, कि इसमें डालो... इसप्रकार अर्थात कि पानी के प्रमाण में जितनी चाहिए उतनी स्वयं अपने से डालता है निर्मल औषधि।

यह अपने हाथ से डाला हुआ, फिर यहाँ कोई तर्क करे कि आत्मा के हाथ तो नहीं और आप कहते हो कि अपने हाथ से डाले हुये, भाई ! यहाँ तो दृष्टांत है। यह हाथ आत्मा का नहीं, अपने हाथ से डाले हुये यह तो दृष्टांत से समझाना है कि यह हाथ है अर्थात अपने हाथ से डालता है। डाल सकता है, कि हाथ

---

१ मैले पानी को थोड़ी देर रखा रहने दे तो मैल अपने आप नीचे बैठ जाता है। इस प्रक्रिया को ठारना कहते है।

उसका है यह अभी सिद्ध करना नहीं। आहाहा !

अपने हाथ से डाला हुआ, डाला गंदे पानी में कतक फल डाला और डालने मात्र से... इसप्रकार, यह इसप्रकार अंदर डाला जहाँ, डालने मात्र से उत्पन्न हुआ, आहाहा ! देखो ? तत्काल मैल और निर्मल जल भिन्न हो गया। आहाहाहा ! जल-कीचड़ के विवेक से पानी और कादव की भिन्नता के कारण अपने पुरुषार्थ द्वारा... आहाहा ! है न ? इस जाति का पुरुषार्थ किया, आर्विभूत किया गया, निर्मल पानी है, वह प्रगट करने में आया, था तो (निर्मल ही) परंतु मलिनता के कारण ढ़का हुआ था, उस मलिन की दृष्टिवालों ने, उसने यहाँ निर्मल (पना) प्रगट किया। निर्मल `है' - ऐसा प्रगट किया है ? आर्विभूत अर्थात प्रगट किया। तिरोभूत अर्थात ढ़क गया। मलिन(ता) को देखनेवाले को निर्मल जल ढ़क गया है परंतु यहाँ मलिनता और जल को भिन्न करनेवाली औषधि डालने पर, अपने हाथसे-पुरुषार्थसे आर्विभाव करने में आया हुआ `सहज एक निर्मलभावपने के कारण' पानी का स्वभाव, यह तो स्वभाव ही उसका है कहते हैं। स्वभाव सहज एक निर्मलभावपने के कारण जल को निर्मल ही अनुभवता है। पानी को तो `निर्मल ही' अनुभवता है। वह मलिन अनुभवता है, भेद नहीं करनेवाला, मलिनता को ही देखनेवाला, अंदर जल निर्मल है यह उसको ख्याल नहीं। आहाहाहा !

अरे ...! उदाहरण भी कैसा दिया है देखो-यह तो दृष्टांत हुआ।

`इसीप्रकार जल और कीचड़ के उदाहरण से... अब सिद्धांत सिद्ध करना है आत्मा में' इसीप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से देखा ? राग की तीव्रता होती है-कर्म का उदय तीव्र होता है और विकार भी स्वयं तीव्र करता है पर्याय में `प्रबल कर्म के मिलने से' आहाहा ! परद्रव्य लिया है, परंतु परद्रव्य के निमित्त से होनेवाला विकारी भाव, आहा ! उसके मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव, भगवान आत्मा स्वाभाविक एक शुद्ध ज्ञायकभाव, कारणपरमात्मा का स्वरूप जो एक निर्मल ज्ञायकभाव `तिरोभूत हो गया है' किसको ? जो रागद्वेष मलिन पर्याय को देखनेवाले को, यही ज्ञायकभाव है है तो है परंतु उसको तिरोभूत हो गया है ढ़क गया है। है तो ज्ञायक, ज्ञायक ही हाँ। आहाहा !

ज्ञायकभाव है, वह तो कभी भी `मलिन होता नहीं, यह तो पर्याय में मलिनता है। पर्याय (मैली है) अंदर ज्ञायकभाव तो ऐसे का - ऐसा ही स्थित है। सुन्दर शुद्ध चैतन्यघन प्रभु आहाहा ! - ऐसा निर्मल है ? जिसका एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। क्या कहा ? जो जीव को राग और द्वेष और कर्म के संबंधवाली मलिनता को देखता है, उसे ज्ञायकभाव है तो अवश्य परंतु उसको ढ़क गया है। वह ज्ञायकभाव

ज्ञायकभाव ढ़कता नहीं, ज्ञायकभाव प्रगट होता नहीं। ज्ञायकभाव तो त्रिकाल (एकरूप) है।

परंतु मलिनता को देखनेवाले को ज्ञायकभाव है विद्यमान... फिर भी उसे (ज्ञायकभाव) ढ़क गया है। क्या कहा समझ में आया ? आहाहा ! जैसे पानी निर्मल है और मलिनता तो उसकी पर्याय में है। इसीप्रकार भगवान आत्मा ज्ञायकभाव तो त्रिकाल निर्मल ही है, परंतु राग और द्वेष एवं पुण्य-पाप की मैली पर्याय को देखनेवाले को, उसको ही जो देखता है - नज़र उसमें ही वही स्थिर है। पर्याय ऊपर और राग ऊपर उसकी नज़रें वहाँ है उसे ज्ञायकभाव विद्यमान स्थित है, परंतु इसके लिये ढक गया है। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसी बात... यह तो अमृत का झरना है। अमृत के मंत्र है यह तो, आहा ! जैसे सर्प को उतारने का मंत्र होता है बिच्छु को काटने का मन्त्र होता है, इसप्रकार यह मंत्र है। आहाहा !

`ऐसा'... क्या कहा ? `**इसप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से**' अर्थात विकारी परिणाम की तीव्रता के कारण, पर्याय में हाँ `**उसका सहज एक ज्ञायकभाव**' स्वभाविक एक ज्ञायकभाव, राग और द्वेष को देखनेवाले को, उसके अस्तित्व को देखनेवाले को, ज्ञायक का अस्तित्व तो ढ़क गया है, है फिर भी वह देखता नहीं अर्थात ढ़क गया है। आहाहाहा !

ऐसा उपदेश लो ! फिर लोक कहते हैं कि सोनगढ़वाले एक निश्चय की बात करते हैं। परंतु व्यवहार से भी होता, (- ऐसा कहते नहीं) बाबूलालजी ने कहा था, न सुरेन्द्र के पास गये थे वहाँ बाबूलाल, वह जो ईसरी में है न सुरेन्द्र ! उन्होंने कहा था, व्यवहार से होता है, इसने मना किया, सभी को यह तकलीफ खड़ी होती है।

यह पानी जैसे मैला है तो अब मैल से निर्मलता का ज्ञान होता है ? इसीप्रकार पर्याय में विकार है, विकार से एक ज्ञायकभाव का भाव हो ? यह एकदम गलत बात है। समझ में आया ?

यह व्यवहार और राग को देखनेवालों को तो व्यवहार और राग ही दिखता है। उसकी उपेक्षा करके जो ज्ञायकभाव है वह तो उन्हें ढ़क गया है। उसकी उपेक्षा कर डाली है। ज्ञायकभाव त्रिकाल है उसकी उपेक्षा, उपेक्षा मलिन भाव की करनी चाहिए। समझ में आया ? आहाहा !

जो आत्मा में पुण्य-पाप के मलिनभाव है उसकी उपेक्षा करना चाहिए। कारण कि वास्तविक ज्ञायकभाव में यह है नहीं, परंतु जिसकी उपेक्षा करना है उसका आश्रय-

उसका आदर किया और जिसकी उपेक्षा नहीं करनी थी उसकी उपेक्षा की। त्रिकाली ज्ञायकभाव है सहजरूप, उसकी उपेक्षा की, अर्थात उसे ढ़क गया (है)। आहाहा !

- ऐसा वीतरागमार्ग ! अभी तो सुनने को मिलना मुश्किल हो गया है बाहर की... क्रियाकाण्ड में फँसे और व्यवहार करते, करते और व्रत और तप और भगवान की पूजा और भक्ति और उपवास और हम गये थे एकबार, दूसरी बार बुखार आया तब वह यह स्वयं सुरेन्द्र अभिषेक करते थे, भगवान की प्रतिमा का करते थे। बुखार आया तब हम गये थे वहाँ, यह सभी करें तो जाने कि अपन... ओहोहो ! कौन करे बापू ! यह शरीर की राग की सभी क्रिया तो जड़ की है थोड़ा तुम्हार भाव हो तो यह भी शुभ भाव राग है, उस राग को देखनेवाला राग से रहित ज्ञायकभाव है, उसे तो यह देखते नहीं। उस समय भी राग होने पर भी, राग को ही देखनेवाले को भी राग होने पर भी वहाँ ज्ञायकभाव है, राग होने पर भी वहाँ ज्ञायकभाव है। परंतु राग को देखने पर ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। आहा...हा ! उसने तो उसे (ज्ञायकभाव को) निकाल दिया, और यह प्रगट होकर पुण्य और पाप के भाव बाहर आ गये (है)। आहाहा ! समझ में आया ? सहज ऐक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया (है) इसमें जरा गंभीरता है, सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो जाता नहीं। ज्ञायकभाव तिरोभूत हो जाता नहीं।

परंतु... कर्म के मिलने से जिसका, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले के लिये बात है। आहाहा ! समझ में आया ? जो कुछ पुण्य-पाप के भाव, उनका ही अनुभव करता है उसे ज्ञायक एक सहज भाव ढ़क गया है, उसकी दृष्टि में वह आता नहीं। उसकी दृष्टि में तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति जो करते वह हमारा है। आहा...हा ! इसप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से देखा ? कठिन कर्म का मिलना-तीव्र विकार चाहे अवश्य हो। आहाहा ! परंतु जिसका सहज एक ज्ञायकभाव ढ़क गया है - ढ़क गया की व्याख्या इतनी। ज्ञायकभाव ढ़कता नहीं।

द्रव्यभाव, द्रव्यस्वभाव है यह तो कायम शुद्ध निर्मलानंद ही है। परंतु जो मलिनाता को देखनेवाले को ज्ञायकभाव ढ़का हुआ न होने पर भी उसे ढ़क गया - ऐसा कहा जाता है। पर्याय दृष्टिवाले को राग की दृष्टिवाले को ज्ञायकभाव विद्यमान है परंतु अपनी नजर में वह लेता नहीं, इसलिये उसे ढ़क गया है। समझ में आया ? आहाहा !

ज्ञायकभाव तिरोभूत होता नहीं यह वस्तु जो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति तो त्रिकाल निर्मलानंद प्रभु ही है। आहाहा ! परंतु जिसो वर्तमान में राग और दया-दान और पुण्य-पाप के विकार को देखनेवाला है और उसकी रुचि में रुका है, और उससे होगा -

ऐसा माननेवाले हैं, उसे ज्ञायकभाव ढ़क गया है। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

ऐसा सहज एक ज्ञायकभाव ढ़क गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला देखा ? ऐसे राग-द्वेष को ही अनुभव करनेवाले... जिसे ज्ञायकभाव विद्यमान है परंतु नजर में लेता नहीं, ऐसे राग को अनुभव करनेवाले जीव को, आहाहा ! आत्मा और कर्म का विवेक नहीं करनेवाले, आहाहा ! भगवान ज्ञायकभाव और रागद्वेष यह भावकर्म विकार भाव, आहाहाहा ! दोनों की भिन्नता नहीं करनेवाला, दो है, वस्तु अपेक्षा दो है, इन दो को दो तरह (से) भिन्न नहीं करनेवाला। आहाहाहाहा ! अर्थात ? आत्मा और कर्म का विवेक अर्थात् भिन्न नहीं करनेवाले अर्थात् आत्मा सहज ज्ञायकभाव यह तो है ही। परंतु उसकी पर्याय में पुण्य-पाप के शुभाशुभ भाव की मलिनता उसका अनुभव करनेवाला यही अस्तित्व है, इतनी ही अस्तित्व स्थिति है। (यही आत्मा है) - ऐसा अनुभव करनेवाले उसे महाप्रभु का जो अस्तित्व है जो ज्ञायक सहज स्वरूप है वह उसकी नजर में आया नहीं, अर्थात ढ़क गया है। छोटाभाई ! - ऐसा है - ऐसा... कलकत्ता फलकत्ता (में) कहीं नहीं मिले, व्यापार में भी न मिले। आहाहा !

दूल्हा को छोड़कर बारात एकत्र करली, दूल्हा कहते हैं न आपके यहाँ, दूल्हा बिना बारात एकत्र कर ली। दूल्हा बिना बारात कहलाये ही नहीं, इस प्रकार निश्चय वस्तु का भान हो उसके राग को व्यवहार कहने में आता (है), परंतु जिसे ज्ञान ही नहीं और राग को ही अपना माने, उसे व्यवहार कहाँ है ? समझ में आया ? कारण कि यह तो राग को ही अपना मानता है, इसप्रकार यह ही स्वयं है इसमें पुनः दूसरी चीज कहाँ आयी ? आहा ! उसे तो यही ही है उसे ज्ञायकभाव है यह तो इसे व्यवहार हो गया-पर हो गया उसे यह व्यवहार हो गया। आहा !

निश्चय से दया, दान, व्रत, भक्ति के भाववाले को ज्ञायकभाव ढ़क गया (है) उसे ज्ञायकभाव दूर हो गया। आहाहा ! जो भूतार्थ है उसे अभूतार्थ कर डाला और जो अभूतार्थ है उसे भूतार्थ मानकर अनुभव किया। आहाहा !

`ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष', पुरुष अर्थात आत्मा। पुरुष अर्थात कहीं स्त्रियों का आत्मा नहीं कर सके और पुरुषों का ही आत्मा - ऐसा कर सकते है - ऐसा नहीं। पुरुषों अर्थात आत्मा। फिर चाहे स्त्री हो कि चाहे पुरुष हो, या तो चाण्डाल हो कि नारकी का आत्मा हो। आहाहाहा ! परंतु जो कोई पुरुष राग को... जिसकी वस्तु में यह नहीं ऐसे राग को ही अनुभव करनेवाले उसका ज्ञायकभाव ढ़क गया होने से, इन दोनों का विवेक नहीं करनेवाले, व्यवहार से विमोहित... आहाहाहा !

वह पुण्य के भाव में ही व्यवहार में मोहित हो गया (है) विमोहित वहाँ विशेष मोहित, मूर्छित हो गया अर्थात कि वहाँ रुक गया। यह राग है वह मैं हूँ और

यह हमारा कर्तव्य है, और उससे मुझे लाभ होगा। आहाहा ! ऐसी स्पष्ट बात है, `व्यवहार से विमोहित हृदयवाले'... देखा ? आहाहा ! जो भगवान ज्ञायकस्वरूप विद्यमान वस्तु मौजूद है, निर्मलानंद सहजस्वभाव उसके सामने देखता नहीं और राग का भाव जो दया और दान और व्रत और तप और भक्ति, उसके सामने देखनेवाले यह व्यवहार विमोहित है - व्यवहार में रुक गये हैं, विशेष व्यवहार में लीन है विमोहित मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! (श्रोता :- अठ्ठाईस मूल गुण में भी दोष लगता है ?) उसमें रुक गये, - ऐसे सभी एक है। यह सुरेन्द्र अभी एक है न ? वहाँ बाबूलालजी गये थे। वहाँ सभी - ऐसा कहते हैं वह। आहाहा ! ऐकांत है, व्यवहार से नहीं होता - ऐसा मानना वह एकांत है। राग की क्रिया करते - करते आनंद प्रगटे, ज्ञायक प्रगटे तब तो अनेकांत हो। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि स्व के आश्रय से प्रगटता है और पर के आश्रय से नहीं प्रगटे, उसका नाम अनेकांत है। तब यह कहते हैं कि राग करते-करते हो उसका नाम अनेकांत है और राग से प्रगटे - ऐसा न माने तो एकांत है। आहाहा !

क्या हो बापू ? प्रभु तुम्हारे उद्धार का मार्ग तो यह है। आहा ! कहाँ रुक गया, जहाँ वस्तु है वहाँ नहीं जाता, जो वस्तु में नहीं, (उस) वस्तु में रुक गया। आहाहा ! चाहे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम कि पंचमहाव्रत के हों, परंतु वह व्यवहार विमोहित है उसमें जो फंस गया है और आत्मा तो उससे भिन्न है उसे यह देखता नहीं तो उसे तो आत्मा ढ़क गया है। आहाहाहा !

समझ में आये - ऐसा है और भाषा सरल है कहीं बहुत (कठिन नहीं)।

व्यवहार से विमोहित हृदयवालों को... जैसे भाव का विश्वरूपपना प्रगट होता है - ऐसा अनुभव करता है। क्या कहा यह ? उस आत्मा को जिसमें भावों का अनेक विश्व अर्थात् अनेकरूप... स्वयं भगवान पहले कहा कि सहज एक ज्ञायकभाव है यह तो सहज एक ज्ञायकभाव है और यह विकारी भाव तो अनेक है, जिसमें भावोंका विश्वरूप अर्थात अनेकरूपता प्रगट है। प्रगट है, विकार ही प्रगटता है, उसे तो विकार ही प्रगट है, आहाहा ! और भगवान आत्मा ज्ञायकभाव तो उसे अप्रगट है। आहा ! जो प्रगट है विद्यमान पदार्थ, उसे प्रगटरूप न माने, पर्याय में रागादिक का प्रगटपना, उसे वह प्रगट है - ऐसा मानता है। यही है सभी यही है। (वस्तु) ही यह है। आहाहा ! (श्रोता :- एक-एक में मन नहीं लगे तो अनेक में मन लगाता है ? उत्तर :- हाँ, मन जाता है अनेक में इसलिये मिथ्यादृष्टि है।

फिर... स्वरूप का स्वीकार होने के बाद... राग आये उसे भिन्नरूप ज्ञेयरूप जानते हैं। परज्ञेय की तरह जानते हैं और यह (अज्ञानी) तो अपना स्वरूप ही राग है और

उससे मुझे लाभ होगा - ऐसा माननेवाले है। आहाहा ! समझ में आया ?

आत्मा ज्ञायक है सहज एक ज्ञायक है - सहज एक ज्ञायकभाव है। ऐसे शुद्धनय से उसका अंतरदृष्टि में ज्ञान होने पर तब तो उसे यह मैलरूप मैं हूँ यह तो नहीं रहा, फिर मैल है उसे तो यह जानता है। जैसे स्व परिपूर्ण सहज स्वभाव हूँ - ऐसा जानता है, उसकी पर्याय में राग है वह राग को जानता है। यह भी जानता है - ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो यह ज्ञान की पर्याय को ही जानता है। समझ में आया ? आहा !

विश्वरूपपना यह विश्वरूपपना क्यों लिखा है ? उसमें सहज एक ज्ञायकभाव है और त्रिकाली एकरूप है वस्तु ध्रुव नित्यानंद ध्रुव। जब पुण्य-पाप के भाव अनेकरूप है। असंख्य प्रकार के दया, दान, व्रत, पूजा, नाम स्मरण, जाप-माला, भक्ति आदि शुभभाव के अनेक प्रकार है और अशुभ के अनेक प्रकार है। आहाहा ! यह शुभ के अनेक प्रकार के भावों को अनुभवनेवाला, व्यवहार में उलझ गया (है) आहा ! उस व्यवहार को ही अपना माननेवाले... आहाहा ! ऐसी बातें है। ऐसे हृदयवाले जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है। वह वस्तु है वह अव्यक्त है, पर्याय की अपेक्षा अप्रगट है। पर्याय में प्रगट नहीं वस्तु में प्रगट है। पर्याय की अपेक्षा से वस्तु (ज्ञायक) अव्यक्त अर्थात अप्रगट है और उसे यह पर्याय है वह व्यक्त और प्रगट है। आहाहाहा !

अज्ञानी को यह पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति यही उसे प्रगट है, प्रगट दिखता है। देखो न यह कितना छोड़ा, दुकान छोड़ी, धंधा छोड़ा, पत्नी छोड़ी, बच्चे छोड़े और यह बैठा। यहाँ अभी एक (बाई) आयी थी वह कहती थी, हमने त्याग किया है और समकित नहीं न यह कैसे ? आहाहा !

भाई ! श्वेताम्बरों का तो सभी समझने जैसा है... दिगम्बर में तो छुल्लक हो तो भी उसे बहुत सहन करना होता है। साधु को तो नग्नरूप में रहना, इन्हें तो (- ऐसा) कुछ नहीं करना, उसकी तो बात क्या ? परंतु विचारे यह नग्न रहें, शीतकाल की ठंड़। आहाहा ! शांतिसागर यहाँ आये थे ९७ में शांतिसागर बहुत बड़े अभी आचार्य। यहाँ शीतकाल के पूष महिने में थे, यह बाहर निकले अंदर दहलान में सुलाया था, बाहर निकले तो इसप्रकार कपें कपें कपें ठंड़ी बहुत बंद करो बंद करो बंद करो। वैसे विचारे नरम थे, परंतु वस्तु स्थिति यहाँ व्यवहार के हृदयवाले अनेकपना प्रगटता है आत्मा - ऐसा अनुभवता है। जैसा है नहीं उसे अनुभवता है, यह मिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)